LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

चारों ओर अलोकाकाश है। आकाश निष्क्रिय द्रव्य है तथा रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध से रहित है तथा अमूर्तिक द्रव्य है।

काल द्रव्य - सभी द्रव्यों में परिवर्तन का सहकारी काल द्रव्य है। जिस प्रकार कील की सहायता से चक्रादि घूमते हैं यद्यपि चक्र में घूमने की शक्ति है। फिर भी कील की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार काल द्रव्य की सहायता से ही सभी में परिवर्तन होता है। लोकाकाश में घड़ी, घंटा, दिन - रात आदि व्यवहार का कारण काल ही है। काल दो प्रकार का है — निश्चय काल और व्यवहार। कालाणु को निश्चय काल कहते हैं। कालाणुओं के निमित्त से ही संसार में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। आकाश के एक प्रदेश में स्थित पुद्गल का एक परमाणु मंद गति से जितनी देर में उस प्रदेश से लगे हुए दूसरे प्रदेश पर पहुँचता है उसे समय कहते हैं। यह समय काल द्रव्य की पर्याय है। समयों के समूह को ही आवली, उच्छ्वास, प्राण, स्तोक, घटिका, दिन - रात आदि कहा जाता है।

यह सब व्यवहार काल हैं। इनके द्वारा ही निश्चय काल या काल-द्रव्य के अस्तित्व का अनुमान किया जाता है।

परमाणुओं से संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी तथा अनन्त प्रदेशी स्कन्ध बनते हैं।
स्कन्ध के छह भेद हैं।
(क) अतिस्थूल — जैसे लकड़ी पत्थर, पर्वत आदि।
(ख) स्थूल जैसे — दूध, घी, तेल, पानी आदि।
(ग) स्थूल - सूक्ष्म जैसे - छाया प्रकाश आदि।
(घ) सूक्ष्म स्थूल जैसे — रस, गंध, वर्ण, स्पर्श आदि।
(ङ) सूक्ष्म जैसे - कर्म वर्गणा सभी दोहरे द्व्यणुक।

2. धर्म तथा अधर्म द्रव्य — गति का कारण धर्म द्रव्य तथा स्थिति का कारण अधर्म द्रव्य है। पंचास्तिकाय में कहा गया है कि जैसे इस लोक में जल मछलियों के चलने में सहायक है वैसे ही धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों को चलाने में सहायक है। जैसा धर्म द्रव्य है वैसा ही अधर्म द्रव्य। ठहरते हुए जीव व पुद्गलों को पृथ्वी की तरह ठहरने में सहायक है। धर्म - अधर्म स्वयं निष्क्रिय द्रव्य हैं परन्तु जीव पुद्गल आदि सक्रिय द्रव्यों को गति, स्थिति में सहायक हैं।

3. आकाश द्रव्य - आकाश नित्य सर्वव्यापी द्रव्य है। यह सभी द्रव्यों को स्थान देता है। आकाश के दो भेद हैं — लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश सर्वव्यापी आकाश के मध्य में है और उसके

होती हैं — स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्र।

२. मुक्त जीव — ये जीव सभी प्रकार के कर्म बन्धन से मुक्त रहते हैं। मुक्त जीव इस लोक में नहीं बल्कि कर्म बंधन से मुक्त रहते हैं। मुक्त जीव इस लोक में नहीं बल्कि कर्म बंधन का त्याग कर लोकाग्र में निवास करते हैं। अतः मुक्त जीवों में कोई भेद नहीं होता।

२. अजीव द्रव्य — अजीव द्रव्य वे हैं जिनमें चेतना नहीं होती। अजीव द्रव्य के पांच भेद हैं — पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

1. पुद्गल — रूप, रस गंध स्पर्शवान होना ही पुद्गल का लक्षण बतलाया गया है। पुद्गल के दो भेद हैं — परमाणु और स्कन्ध। पुद्गल का न्यूनतम भाग परमाणु कहलाता है। यह नित्य है। स्कन्ध परमाणुओं का समूह रूप है। जब समूह रूप का विघटन होता है तो अन्त में शेष परमाणु रहता है। प्रत्येक परमाणु में एक रस, एक रूप, एक गन्ध तथा दो स्पर्श होते हैं। परमाणुओं के समूह से उत्पन्न द्रव्य स्कन्ध कहलाता है। दो परमाणुओं से द्वयणुक, तीन से त्र्यणुक इत्यादि। इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात और अनन्त

संचालन नहीं कर सकता। जैसे संत
५. शरीर के निर्माण और
विकास से भी जीव द्रव्य या आत्म-तत्व
की सिद्धि होती है। शरीर तो पुद्गलों के
संयोग का परिणाम है। परन्तु पुद्गलों
में संयोग कराने के लिए किसी निमित्त
कारण की आवश्यकता है। यह निमित्त
कारण जीव या आत्मा ही है।
जीव दो प्रकार का
है — १. संसारी २. मुक्त
१. सांसारिक जीव -
सांसारिक जीव है जो शरीर धारण
कर कर्म बन्धन के कारण नाना योनियों
में भ्रमण करता रहता है। संसारी जीव
चार प्रकार के हैं — नारकी, तिर्यञ्च,
मनुष्य और देव। पृथ्वी के नीचे
नरक में निवास करनेवाला जीव नारकी है
तथा ऊपर स्वर्ग में निवास करनेवाले
जीव देव कहलाते हैं। पशु-पक्षी आदि
तिर्यञ्च हैं तथा हम सभी मनुष्य हैं।
सभी जीवों में ज्ञानेन्द्रियाँ भिन्न हैं
जिनके द्वारा जीव स्पर्श, रस, गंध तथा
शब्द का ज्ञान प्राप्त करते हैं। पृथ्वी कायिक,
जल कायिक, अग्नि कायिक, वायुकायिक
और वनस्पति कायिक जीवों को केवल
एक ही इन्द्रिय स्पर्श होता है। इन
जीवों को स्थावर कहा जाता है।
कीट आदि को दो इन्द्रियाँ होती हैं।
स्पर्श तथा रसना। चींटी आदि जीवों
की तीन इन्द्रियाँ होती हैं — स्पर्श
रसना, घ्राण तथा चक्षु। मनुष्य
पशु-पक्षी आदि की पाँच इन्द्रियाँ

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

जिसप्रकार छोटे या बड़े स्थान को पाकर प्रकाश कम या अधिक होता है इसीप्रकार शरीर में व्याप्त आत्मा भी छोटे या बड़े शरीर की आकृति के अनुसार ही होता है। तात्पर्य यह है कि शरीर के परिमाण के अनुसार ही आत्मा का परिमाण है। बाल्यावस्था का शरीर युवावस्था के शरीर में बदल जाता है तो आत्मा भी युवावस्था के शरीर में बदल जाता है तो आत्मा भी युवावस्था के शरीर के परिमाण को धारण करता है।

जीव या आत्मा की सिद्धि के लिए जैन दर्शन में कुछ तर्क भी दिये गये हैं।

1. आत्मा को सुख-दुःख आदि गुणों का साक्षात् अनुभव होता है। सुख-दुख आदि चैतन्य के गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। ये गुण हैं तो इनका आधार (आत्मा) भी अवश्य है।

हमे ज्ञान प्राप्त होता है इन्द्रियों के माध्यम से। इन्द्रियाँ साधन है कारण है। इन साधनों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला जीव या आत्मा ही है। आत्मा ही इन साधनों का उपयोग करता है।

3. शरीर अचेतन है परन्तु सक्रिय है। इसकी क्रिया का संचालन करनेवाला कोई चेतन तत्व (जीव) अवश्य होना चाहिए। शरीर स्वयं अपना

किसी बाह्य पदार्थ का ग्रहण होता है तो वह चैतन्य ज्ञान कहलाता है तथा जब चैतन्य से चैतन्य का ही ग्रहण होता है तो चैतन्य दर्शन कहलाता है। यह चेतना जीव का गुण है। अतः जीव को ज्ञान दर्शनात्मक कहा गया है। परन्तु यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि चेतना गुण होते हुए भी चेतना और जीव में गुण-गुणी का संबंध नहीं है। न्याय-वैशेषिक में भी ज्ञान को आत्मा का गुण बतलाया गया है। इस गुण का गुणी या आधार आत्मा है जिसमें यह ज्ञान नामक गुण समवाय सम्बन्ध से समवेत रहता है। इसीप्रकार न्याय-वैशेषिक में आत्मा ज्ञानवान या ज्ञानवाला कहा गया है। परन्तु जैन दर्शन में आत्मा को ज्ञान स्वरूप कहा गया है अर्थात जीव स्वयं चेतना है। आत्मा ज्ञानवाला नहीं, ज्ञान ही आत्मा है। दोनों में कोई भेद नहीं।

कर्म से ही जीव का बन्धन तथा मोक्ष दोनों होता है। जीव में पाँच प्रकार के भाव माने गये हैं। 1. क्षायिक, क्षायोपशामिक, औपशामिक, औदायिक और पारिणामिक इसीप्रकार जीव को भोक्ता भी कहा गया है क्योंकि उसे सुख-दुःख की अनुभूति होती है। कर्ता भोक्ता होने के कारण जीव को कर्म संयुक्त माना गया है। जीव को शरीर के बराबर बतलाया गया है क्योंकि शरीर के प्रत्येक अंग में आत्मा व्याप्त है।

LIC

क्षण-क्षण परिवर्तन वस्तु का स्वभाव है। बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था आदि मानव जीवन में परिवर्तन के ही परिणाम हैं। परन्तु फिर भी मनुष्य की एकता बनी रहती है अर्थात् बाल्यावस्था से युवावस्था में परिवर्तित एक ही मनुष्य है। इस प्रकार परिवर्तन के साथ ही अपरिवर्तनशीलता भी है। यदि पदार्थों को सर्वथा क्षणिक ही मान लिया जाय तो पूर्वक्षण तथा उत्तरक्षण में संबंध का विच्छेद हो जायेगा। इसी कारण जैन दर्शन में द्रव्य को नित्यानित्यात्मक सामान्य विशेषात्मक त्रिलक्षण सम्पन्न माना गया है।

द्रव्य दो हैं — 1. जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य।

1. जीव द्रव्य :— जीव या आत्मा जैन दर्शन में एक स्वतंत्र द्रव्य माना गया है। जीव का लक्षण है 'चेतना' अर्थात् चेतना ही जीव का असाधारण धर्म बतलाया गया है। (चेतना लक्षणो जीवः) चेतना की दो अवस्थाएँ होती हैं— 1. अन्तर्मुख तथा बहिर्मुख। जब चेतना अन्तर्मुखी होकर आत्मस्वरूप को ग्रहण करती है तो इसे दर्शन कहते हैं।

जब चेतना बहिर्मुखी हो बाह्य पदार्थों को ग्रहण करती है तो इसे ज्ञान कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब चेतना 'स्व' से भिन्न

Dr. Vandana Suman
Associate Professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara

B. A. Part - 1 (Hons)
Paper - I
Indian Philosophy

"Jain".

(जैन: द्रव्य एवं जीव)

साधारणतः विष्णु को देवता माननेवालों को वैष्णव, शिव को शैव, शक्ति को माननेवाले को शाक्त कहते हैं। इसी प्रकार 'जिन' को देवता मानने वाले को जैन कहते हैं तथा उनके धर्म को जैनधर्म कहते हैं। अर्थात् सभी प्रकार के विकारों पर विजय प्राप्त करनेवाला ही 'जिन' कहलाता है। जिन लोग स्वभाव सिद्ध, जन्म सिद्ध, शुद्ध, बुद्ध भगवान नहीं होते, वरन साधारण प्राणियों के समान ही जन्म ग्रहण कर काम, क्रोधादि, विकारों पर विजय प्राप्त कर परमात्मा बन जाते हैं। अर्थात् ईश्वरत्व को प्राप्त होते हैं। ऐसे वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी ही 'जिन' हैं तथा उनके द्वारा दिया गया उपदेश जैनधर्म है। 'जिन' शब्द का अर्थ है। जीतनेवाला।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में, उत्पत्ति विनाश और स्थिरता ये तीनों लक्षण पाये जाते हैं। 'द्रव्य' को गुण पर्यायात्मक कहा गया है क्योंकि द्रव्य गुण रूप से नित्य है तथा पर्याय रूप से अनित्य है। जैसे मृत्तिका से घट का निर्माण होता है। अर्थात् मृत्तिका के पिण्ड रूप पर्याय का नाश हो घट रूप पर्याय की उत्पत्ति होती है परन्तु द्रव्य (मृत्तिका) वर्तमान रहती है। अतः द्रव्य सत् है जो मृत्तिका रूप से क्योंकि एक पर्याय के विनाश से दूसरे पर्याय की उत्पत्ति होती है परन्तु आकार परिवर्तन से द्रव्य में परिवर्तन नहीं होता। द्रव्य नित्य है तथा उसका आकार या पर्याय अनित्य